

## शिक्षा का स्वप्न

प्रेमपाल शर्मा

**पं**जाबी के मशहूर कवि अवतार सिंह पाश की कविता 'सबसे खतरनाक होता है हमारे सपनों का मर जाना' शायद उत्तर भारत में पिछले तीन-चार दशक की सबसे प्रिय कविता रही होगी। कृष्ण कुमार के शिक्षा विषयक छोटे-छोटे निबंधों को पढ़ते हुए बरबस मुझे उन सपनों की याद आई जो कृष्ण कुमार के यहां मुकम्मिल जिंदा हैं और बार-बार हिन्दी-अंग्रेजी के पृष्ठों पर कई-कई रूपों में फड़फड़ाते रहते हैं। अपनी भाषा में शिक्षा, नवाचार, समान शिक्षा ऐसे ही सपनों का नाम है जिसे देश का अमीरी की तरफ बढ़ता मध्यवर्ग भूलता जा रहा है। आर्थिक असमानताएं ऐसे सपनों की और बड़ी दुश्मन हैं। अफसोस यही कि जिस शिक्षा के हथियार से इस मध्यवर्ग के दिमाग के जाले साफ किए जा सकते थे वह हथियार सिर्फ खुटल ही नहीं हुआ है बंदर के हाथ में उस्तरे की कहानी में वर्णित अपनी ही नाक काटने पर आमामादा है।

'नींद उड़ाने वाला सपना' निबंध में कृष्ण कुमार का दर्द साफ महसूस किया जा सकता है। पाठकों को याद दिला दें कि अगस्त 2015 में इलाहाबाद हाई कोर्ट ने शिक्षा के संदर्भ में उम्मीद से परे एक साहसिक निर्णय दिया था। उद्देश्य था शिक्षा की बरबादी को बचाने के लिए सरकारी स्कूलों को ठीक करना। और ये तभी ठीक होंगे जब सभी सरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों के बच्चे अनिवार्य रूप से इन्हीं स्कूलों में पढ़ें। सरकारी कोष से किसी भी रूप में पगार लेने वाले सभी कर्मचारी इसमें शामिल थे। उत्तर प्रदेश में उस वक्त समाजवादी पार्टी की अखिलेश यादव की सरकार थी। सरकार अगले डेढ़ वर्ष तक सत्ता में भी रही लेकिन दूर-दूर तक इस आदेश के पालन की चर्चा भी दिल्ली से लेकर इलाहाबाद, लखनऊ तक नहीं होती। लेखक की कल्पना सही है कि इस आदेश ने उत्तर प्रदेश के नेताओं, अधिकारियों की नींद उड़ा दी है। 'अफसर, नेता और मजदूर के बच्चे साथ-साथ पढ़ेंगे तो समाज का बंटवारा घटेगा, शिक्षा का स्तर सुधरेगा और छुटपन में अंग्रेजी थोपे जाने की समस्या भी सुलझेगी। इतनी बीमारियों का एक साथ इलाज एक सपने जैसा लगता है।' (पृष्ठ 189)

ऐसा ही एक और सपना है परीक्षा में नकल न होना। रवीन्द्र नाथ टैगौर के एक व्याख्यान का सहारा लेते हुए लेखक का मानना सही है कि 'जो नकल का सहारा नहीं भी लेते वे रटत पर निर्भर हैं। यानि शिक्षा व्यवस्था में पढ़ाई का उद्देश्य समझ का विकास करना तो है ही नहीं। प्रश्न पत्र, नकल, रटत परीक्षा ऐसे जाल में हम उलझे हैं कि दूर-दूर तक मुक्ति नजर नहीं आ रही। उत्तर भारत में ठीक वसंत के मौसम में ये परीक्षाएं होती हैं। एक उद्योग की तरह- रिश्तेदार, स्कूल विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार में नकल करने-कराने की एक से एक नयाब तरकीब आजमाते हैं। बतौर लेखक के शब्दों में - 'वसंत की विदाई के साथ सब कुछ सामान्य हो जाता है। 'हालांकि सच तो यह है कि वसंत का अहसास वे ही कर पाते हैं जो सुखी सम्पन्न हैं, नौकरियों की निश्चितता में है, इस देश का आम नागरिक तो न 'सावन सूखा न भादों हरा' की रफ्तार में जीता है। यह देश के सामाजिक जीवन की अनौखी विडंबना पर उंगली रख देना है।



**पुस्तक :** कुछ सत्य कुछ सुन्दर

**लेखक :** कृष्ण कुमार

**प्रकाशक:** सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली

**मूल्य :** 180 रुपये ; **पृष्ठ :** 190

रोहित वेमुला की आत्महत्या के संदर्भ में लिखे 'विश्वविद्यालय का बीहड़' में कई प्रश्नों का जंगल है। बहुत गंभीर लेख- इलाहाबाद विश्वविद्यालय से लेकर अतीत और आज की पूरी शिक्षा व्यवस्था की जांच करता। याद होगा पूरे देश में इस आत्महत्या ने एक खलबली मचा दी थी। इसलिए लेखक के कुछ प्रश्न और प्रासंगिक हैं। 'जो प्राचीन भारत की शिक्षा का गुणगान करते हैं क्या इस बात के कोई प्रमाण हैं कि उन दिनों जाति व्यवस्था और वर्ण की अवधारणा के प्रति विद्यार्थियों में कोई खलबली मचती थी? जाति ही क्यों स्त्री के सीमाबद्ध जीवन पर सवाल उठाना प्राचीन शिक्षा पद्धति सिखाती हो ऐसे संकेत भी ढूंढना मुश्किल है। बराबरी की चेतना जगाना आधुनिक शिक्षा दर्शन में ही संभव हो सका है। इसके बावजूद इलाहाबाद जैसे विश्वविद्यालय सवा सौ साल के बाद भी जातिवाद से ग्रस्त है, नियुक्तियां जाति के आधार पर होती हैं और शिक्षकों के संगठन भी जाति पर आधारित हैं। अम्बेडकर और लोहिया ने जाति व्यवस्था पर जिस प्रखरता से प्रश्न किए वैसी प्रखरता आज विश्वविद्यालयों में दुर्लभ है।' (पृष्ठ 183)

यहां लेखक से कुछ प्रश्न वापस करने का मन होता है। इलाहाबाद के प्रसंग से ही बात की जाए तो देश के प्रथम प्रधानमंत्री का निवास इलाहाबाद में ही था। कर्म क्षेत्र की शुरुआत भी वहीं से हुई। स्वाभाविक है उसका कुछ असर तो वहां होना चाहिए था। उनकी ख्याति भी एक लोकतांत्रिक विज्ञानिक दृष्टि के पुरोधे के रूप में है। समय भी उनको कम नहीं

मिला था- 1947 से वर्ष 1964 तक। फिर पूरे देश में तो बाद में असर होता, इलाहाबाद में भी क्यों जाति व्यवस्था और मजबूत होती गई? शायद राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी ही कही जाएगी या कहीं सत्ता पर काबिज रहने के कांग्रेसी प्रलोभन जिन्होंने सामाजिक बराबरी के मुद्दों पर चुप रहने में भलाई समझी। और नेहरू के बाद की भी सभी सत्ताओं ने यही किया है। वे नाम भले ही अम्बेडकर, लोहिया का लेते रहे लेकिन जाति को मिटाने में उनके अनुयायियों की मंशा पर शक होता है। रोहित वेमुला के मामले, तथ्यों, उसके पत्र से भी यह फांके साफ दिखाई पड़ती हैं। याद दिला दें ठीक उन्हीं दिनों तमिलनाडु के एक गांव में तीन छात्राओं ने कुएं में कूद कर सामूहिक हत्या की थी क्योंकि उनके पास फीस चुकाने के पैसे नहीं थे और वे कॉलिज की प्रताडना से परेशान थीं। तीनों ही दलित थीं। वेमुला के राजनैतिक शोर में ये आत्महत्याएं अखबारों की सुर्खियां नहीं बनी। कारण और भी स्पष्ट था यह कॉलिज निजी था। निजी कॉलिजों में शिक्षा के नाम पर हो रहे शोषण का भी भंडाफोड़ होता यदि इन बेचारी छात्राओं का मामला तूल पकड़ता। सब चुप्पी साध गए।

क्या ये हमारे समय की कम बड़ी विडंबना है? क्या वेमुला से ज्यादा शोर इन आत्महत्याओं पर नहीं मचना चाहिए था? कृष्ण कुमार जी ने इस लेख में जो प्रश्न उठाए हैं उन सबके सिरे इन छात्राओं की आत्महत्याओं में ज्यादा साफ दिखते हैं। अभी हाल में मेडिकल की 'नीट परीक्षा' में फेल होने पर तमिलनाडु की अनीता की आत्महत्या शिक्षा में भाषा के प्रश्न को उजागर करती है। अफसोस वहां भी वेमुला की तरह शोर नहीं उठा। अनीता एक दलित मेधावी लड़की थी, जिसने तमिलनाडु में बारहवीं कक्षा में 1200 में से 1176 नम्बर पाए थे। सर्वोच्च अंक। लेकिन नीट में बुरी तरह असफल। कारण बारहवीं में उसका माध्यम तमिल था। अपनी भाषा में शिक्षा पाने वालों को अचानक अंग्रेजी माध्यम में खड़ा करना कितना बड़ा अपराध है यह अनीता जैसी मेधावी छात्रा की आत्महत्या के बावजूद भी हमारी शिक्षा व्यवस्था समझने को तैयार नहीं है। रोहित वेमुला के प्रसंग में उठा विवाद जरूरी है लेकिन उसकी राजनीति बहुत खतरनाक। यही कारण है कि न इलाहाबाद, हैदराबाद जैसे मशहूर विश्वविद्यालयों से जाति व्यवस्था खत्म हो रही न दूसरे संस्थानों से। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' इन प्रसंगों में प्रासंगिक हो उठती है। रात के अंधेरे में चलते जुलूस में हर पार्टी के नेता, बुद्धिजीवी, पुलिस, डोमाजी उस्ताद सभी शामिल हैं। जातिवाद के अंधेरे के खिलाफ लड़ने की ताकत अब तो किसी भी दल में नहीं बची।

देश की समस्याओं के कितने सिरे हैं? हजारों, लाखों! या कह सकते हैं समाज सापेक्ष। जितनी समस्याएं समाज-व्यवस्था की उसी अनुपात में शिक्षा की। असमानता, लिंग भेद, जातिवाद के बाद पाठ्यक्रम, माध्यम, परीक्षा मूल्यांकन से होती

हुई शिक्षकों और स्कूल की चारदीवारी तक। इसीलिए कृष्ण कुमार जैसे शिक्षाविद हर लेख में नई रोशनी डालते हैं। भला हो संचार माध्यमों, ग्लोबलाइजेशन का जिससे दुनिया भर के देश समाज के अनुभव बहुत पारदर्शिता से साझे किए जा सकते हैं। देखा जाए तो उम्मीद की किरण सारी आलोचना के बाद यही है कि जब दूसरे मुल्क अनुभवों से सीख कर आधुनिक समाज बनाने में शिक्षा के हथियार का ऐसा सदुपयोग कर सकते हैं तो भारत क्यों नहीं।

लेकिन इस पुस्तक में केवल शिक्षा संबंधी ही लेख नहीं है, गांव, औरत, प्रकृति, देश और संस्कृति के अलग अलग खंडों में कुल मिलाकर पचास और भी हैं। हर लेख उतनी ही रोचकता से शुरू। 'जब मैंने पांच वर्ष की एक बच्ची से पूछा कि अच्छी औरत कौन होती है तो उसका जबाब था जो चुपचाप रसोई में खाना बनाती है।' अकेले इस उत्तर की खिड़की से भारतीय समाज में गढ़ी जाती औरत या रीति के घेरे में लड़की की पहचान की जा सकती हैं। 'समाज और परिवार मिलकर बच्ची के सोच को रीति-रिवाजों की रस्सियों से बांधना शुरू कर देते हैं। बच्ची की उम्र बढ़ने के साथ-साथ रस्सियों की जकड़ बढ़ती जाती है और औरत का व्यक्तित्व समाज के मान्य सांचे में ढलता जाता है (पृष्ठ 137) यह कोई रोमानी चित्रण नहीं है बच्ची के बहाने भारतीय औरत का। गहराई से संवेदनशील मन की करुण आवाज है। लड़की की पूरी स्थिति के दुख को समझने के लिए पाठकों को कृष्ण कुमार की किताब 'चूड़ी बाजार में लड़की' जरूर पढ़नी चाहिए। यह समाज शास्त्रीय अध्ययन का बेजोड़ शोध है। लेखक का निष्कर्ष गौर तलब है- 'लड़कियों के पारिवारिक जीवन और शिक्षा के उद्देश्यों के बीच लगातार तनाव-टकराव बना रहता है। रीति-रिवाजों के दकियानूसी अनुष्ठानों और श्रृंगार-सामग्री की रासायनिक चमक-दमक में जकड़ा लड़कियों का बचपन अपनी प्राकृतिक स्फूर्ति और सुषमा खो बैठता है।' (पृष्ठ 140) अफसोस इन सब बेड़ियों को ही अलग-अलग समाज-परंपरा, रीति, धर्म के नाम पर लादे रहते हैं। स्त्री हो या दलित समाज- भारतीय समाज के संदर्भ में कमजोर वर्गों पर और भी ज्यादा।

कृष्ण कुमार इधर के उन लोकप्रिय लेखकों में हैं, जिनके लंबे से लंबे निबंध और इस पुस्तक में शामिल छोटे लेखों को समान रोचकता से पढ़ा जा सकता है। केवल रोचक ही नहीं, पढ़ते ही थोड़ी देर के लिए आप स्वयं को टटोलने लगते हैं। 'मुश्किल में खाना' लेख में बनावटी हानिकारक रंगों की बात की गई है। क्या ऐसे लेख पढ़ने के बाद आप उसी उत्साह से रंगीन मिठाई की तरफ बढ़ेंगे? नहीं। वैसे ही आपकी संवेदनशीलता, बच्चे पर उठा हाथ, औरत का घूंघट, बेनेगल का गांव, रेल की खिड़की जैसे लेखों से और पिघलने लगेगी। याद करूं तो ये ज्यादातर लेख जनसत्ता अखबार में छपे हैं। मुद्दा भले ही फौरी घटना के प्रसंग में छुआ गया हो उसे खींच-खींच कर छोटे लेख की ऐसी पोटली में लेखक बांध देता है कि बिना दिमाग पर वजन डाले आप उसे पूरा पढ़कर ही सांस लेते हैं। बाद में गुनगुनाते भी हैं और शिक्षित भी होते हैं। अच्छे लेखक की यही कसौटी होनी चाहिए। इसीलिए मेरे अनुमान से जनसत्ता में कृष्ण कुमार का कालम सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखों में शुमार किया जाएगा। आश्चर्य की बात है जनसत्ता समेत किसी भी अखबार में ऐसे लेख लगभग लुप्त हो गए हैं। हिन्दी पत्रकारिता का तो पतन-काल यह है ही हिन्दी समाज पर भी टिप्पणी है। शायद इसीलिए कृष्ण कुमार को भूमिका में लिखना पढ़ता है कि 'लेख की आकृति' हमारे समय में अखबारों और पत्रिकाओं ने तय कर दी है। वह कितनी संक्षिप्त होगी यह संपादकों की दृष्टि और कृपा पर निर्भर है। इस पर दुख या अचरज करना व्यर्थ है इससे कहीं बड़े दुख हमारी भाषा ने झेले हैं। (भूमिका) थोड़ा मतभेद झेले नहीं, आगे हमारी भाषाएं और झेलेंगी। अंग्रेजी ने हिन्दी में इतने लिखे अच्छे लेखों, पुस्तकों के लिए पूरे भारतीय समाज में जगह नहीं छोड़ी। यदि सरकारी नौकरियों, व्यवसायों, सेमिनारों के विमर्श में अपनी भाषाओं की थोड़ी बहुत भी जगह बची रहती तो इस पुस्तक के लेखों की सीढ़ियां चढ़कर पाठक जरूर कृष्ण कुमार की अन्य पुस्तकें - मेरा देश तेरा देश, विचार का डर, बच्चे की भाषा और अध्यापक, शांति का समर, ढूँढ-ढूँढकर पढ़ते। खैर, सारा दोष सत्ता का ही नहीं है हम जैसे पढ़े-लिखे बैलों का भी है जिनके कंधों पर सत्ता का जुआ रखा है और हम उनकी मर्जी से ही उनके खेत जोत रहे हैं। पैना चाबुक खाते हुए। काश ऐसी पुस्तकों के दस-बीस संस्करण साल भर में ही बिक पाते। कुछ सत्य तो समाज में पहुंचता कुछ सुन्दरता के साथ। ♦

**लेखक परिचय:** कथाकार एवं लेखक हैं। शिक्षा पर लेखन एवं चिंतन उनके प्रिय विषय हैं। रेल्वे से सेवानिवृत्त हैं।

**संपर्क:** 9971399046; prempalsharma@yahoo.co.in